International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 12 Issue 9 || September 2023 || PP. 263-266

भारत में वित्त प्रबंधन व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रिंकी कुमारी
शोध छात्रा, इतिहास विभाग, बी.एन.एम.यू., मधेपुरा, बिहार

सार

वित्तीय व्यवस्था अथवा राजस्व व्यवस्था का मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में काफी महत्व है। वित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत निजी एवं राजकीय दोनों वित्त संबंधी व्यवस्था आती है। परन्तु साधारण तौर पर वित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत राजकीय अथवा सार्वजनिक वित्त वास्तविक प्रणाली शामिल है. चूँकि पहले के समय में राज्य के कर्तव्य सुरक्षा व्यवस्था तक ही सीमित थे, इसलिए वित्त व्यवस्था का महत्व सीमित था। यह विचार कि सबसे प्रभावी प्रशासन वह है जो सबसे कम कर एकत्र करता है और सबसे कम सार्वजनिक धन का उपयोग करता है, उस समय व्यापक रूप से प्रचलित था। लेकिन जैसे–जैसे 20वीं सदी के अंत में राज्य के गैर–हस्तक्षेप का युग ख़त्म होने लगा, मानव आर्थिक जीवन में राज्य के हस्तक्षेप की संभावना बढ़ गई और परिणामस्वरूप, राज्य के वित्त का महत्व काफी बढ़ गया।

विस्तार

राजकीय वित्त व्यवस्था की घटना कोई नवीन घटना नहीं है वरन प्राचीन कई भारतीय ग्रन्थों में वित्तीय व्यवस्था संबंधी विचार देखने को मिलते है। परन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसकी क्रमबद्ध विवेचना देखने का मिलती है। अर्थशास्त्र मूलतः राज्य प्रशासन के लिए नीति निर्देशन के रूप में रचा गया है, और आय–व्यय का राज्य कार्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

कौटिल्यकालीन एवं आधुनिक लोक आय :–

आर्थिक इतिहास इस बात की साक्षी है कि किसी भी देश की उन्नति राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर ही निर्भर करती है। लोक आय के विभिन्न साधनों को मुख्यतया दो वर्गो–

(1) कर आय स्रोत एवं

(2) गैर कर आय स्रोत के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। परन्तु कौटिल्य ने आय वृद्धि के कुछ अन्य साधनों की भी चर्चा किया है जिसे आयमुख से जाना जाता है। कर आय स्रोत के अन्तर्गत विभिन्न करों से प्राप्त आय को सम्मिलित किया जाता है। इसके अलावे लोक आय के आयमुख साधन का भी महत्वपूर्ण योगदान है। उन सबका विवेचन इस रूप में प्रस्तुत है।

(1) कर आय स्रोत :

प्राचीनकाल से ही राजकीय वित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत कर आय स्रोतों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिन्दुओं की शासन व्यवस्था में राजकर का मौलिक महत्व माना गया है। चूँकि राजकर का संबंध जनता से होता है, इसी दृष्टि से राजकर को निर्धारित करने के सारे नीति नियम यद्यपि धर्मग्रंथों द्वारा निर्धारित किए जाते थे तथा उनको लागू करने से पूर्व उस पर समाज की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य होता था। इस प्रकार धर्मशास्त्र द्वारा निर्धारित तथा समाज द्वारा स्वीकृत जो राजकर होता था, शासन व्यवस्था जैसी भी रहे, किन्तु राज्यकर के नियमों तथा वसूली में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं आने दिया जाता था। यही कारण था कि राजकर के संबंध में राजा तथा प्रजा के बीच कोई विवाद नहीं खड़ा हुआ।

राजकर के संबंध में महाभारत में एक सुन्दर प्रसंग है। उसमें लिखा है कि षष्ठांश बलिकर, अपराधियों से मिलनेवाला जुर्माना तथा उसके द्वारा अपहृत धर्म से जो कुछ भी न्यायतः प्राप्त हो, यह सब शासन का वेतन स्वरूप माना जाता था।[1]

नारदस्मृति के अनुसार शासन को पूर्व निश्चित नियमों के अनुसार जो धन प्राप्त हो तथा भूमि को उपज का जो षष्ठांश प्राप्त हो वह सब राजकर होगा तथा प्रजा की रक्षा करने के पुरस्कार स्वरूप राजा को मिलेगा।[2]

'शुक्रनिसार' में, पुजारी ने लोगों की ओर से बोलते हुए, राजा को राज्याभिषेक के दौरान रखरखाव के लिए राजस्व का उचित हिस्सा देने की पेशकश की।[3] राजा को अपने अनुयायियों पर बोझ नहीं डालना चाहिए और मधुमक्खी की तरह उन्हें नुकसान पहुंचाए बिना पेड़ों से शहद इकट्ठा करना चाहिए।[4] यह नियम रॉयल्टी मानदंडों और एक सक्षम शासक होने के महत्व पर जोर देता है।[5]

(i) भूमिकर :

भूमिकर राज्य की आय का मुख्य साधन था। भूमि की उपजाऊ शक्ति व गुण–दोष के आधार पर यह कर लगाया जाता था। विभिन्न राज्यों में कर की विभिन्न दरें होने या एक ही राज्य में विभिन्न समयों पर विभिन्न दरों से कर लगाये जाने के उल्लेख स्मृतियों में मिलते है। मनु उपज का छठा, आठवां या बारहवां भाग कर के रूप में लेने का निर्देश करते है। लेकिन समान्यतः उपज का छठा भाग ही भूमि कर के रूप में लिया जाता था।

फसल एकत्र करते समय सरकारी कर्मचारियों के उपस्थित रहने के उल्लेख मिलते है। इससे यह ज्ञात होता है कि समूची उपज का ही छठा भाग वसूला जाता था, खर्च काटने के बाद बची उपज का नहीं। भूमि कर प्रायः अनाज के रूप में ही प्राप्त किया जाता था, इसके अनेक प्रमाण मिलते है। भूमि कर का पारिभाषिक नाम ''भाग'' ही इस बात का सूचक है कि यह खेत में उत्पन्न उपज का ही एक भाग था। स्थान–स्थान पर राज्य की ओर से विशाल कोष्ठागार बनवाए गए थे, जहाँ भूमि कर के रूप में मिले अब तक के अन्न का संचय किया जाता था। इसका मुख्य अधिकारी कोष्ठागारध्यक्ष होता है।

कुछ प्रमाणों से ज्ञात होता है कि भूमि कर नकद भी वसूल किया जाता था। राजकीय कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त जो भूमि शेष रह जाती थी, वह कृषि कार्य हेतु अन्य कृषकों तथा श्रमजीवियों को दे दी जाती थी तथा उनसे उसका निर्धारित अंश लिया जाता था। जो किसान अपनी श्रम से ही निर्वाह करते थे, उनसे उपज का चौथा या पाँचवाँ भाग कर के रूप में लिया जाता था।

(ii) व्यापार तथा उद्योगों पर कर :

कृषि की तरह व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योगों को भी कर भार उठाना पड़ता था। इन पर विविध प्रकार के कर लगाए जाते थे। इन करों के द्वारा जो भी धन या सामग्री राजकोष के निमित्त प्राप्त होती थी, उसे ''दुर्ग'' नामक कर के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता था।

टोल नकद में एकत्र किया जाता था, जिसमें चांदी, सोना और गहनों के बदले नकद दिया जाता था। लोग करों का भुगतान नकद या वस्तु के रूप में कर सकते थे। चुंगी की कीमतें उत्पाद के अनुसार अलग–अलग होती थीं, जिसमें कपास को 20वां या 25वां भाग, रेशमी कपड़े को 10वां या 15वां भाग और सब्जियां, फल, कंद, सूखे समुद्री भोजन और मांस को छठा हिस्सा मिलता था। 15 चुंगी दर आवश्यकता, अवधि, क्षेत्र और सरकारी नीति के अनुसार भिन्न होती थी।

राज्य द्वारा माल तौल में प्रयुक्त उपकरणों की जाँच कर उन्हें प्रमाणित किया जाता था तथा इसके लिए व्यापारियों को निरीक्षण कर देना पड़ता था।

इस प्रकार, वाणिज्य और उद्योग कर ने कौटिल्य के भारत में कर राजस्व के संग्रह में एक आवश्यक भूमिका निभाई।

(iii) खनिकर :

राज्य में खानों से जो पदार्थ निकाले जाते थे, उन पर भी कर लगता था। खनिकर, खानों से निकलने वाले पदार्थो जैसे–सोना, चाँदी, हीरा, मोती, मणि, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, विशेष प्रकार की मिट्टी, पत्थर, रसधातु आदि पर लगता था।[19] सभी खानें राजकीय सम्पत्ति समझी जाती थीं। कुछ का खनन शासन द्वारा स्वयं कराया जाता था तथा कुछ ठेके पर दे दी जाती थी।

(iv) सेतुकर :

पुष्पोधान, फलोचान, नारियल, केले, जड़ों से प्राप्त होनेवाली वस्तुएँ जैसे हल्दी, अरबी, गाजर आदि साग–सब्जियों के क्षेत्रों पर लगनेवाला कर ''सेतु'' कहलाता था।

(v) वनकर :

कौटिल्य ने वन के अन्तर्गत पशु, मृग, विविध प्रकार के काष्ठ तथा हाथी आदि को शामिल किया है। इन पर लगनेवाले कर को ''बन'' की संज्ञा दी गयी है।

(vi) ब्रजकर :

वैदिककाल में पशुपालन पर भी करारोपण किया जाता था। स्मृतिकार मनु तथा शुक्र ने पशु यूथ पर लगनेवाले कर की दरों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने गाय, भौंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, अश्व, खच्चर आदि पशुओं को ''ब्रज'' नाम से सम्बोधित किया है। इन पशुओं का व्यवसाय करनेवाले लोगों से इन पशुओं की वृद्धि पर कर लिया जाता था, जो समान्यतया पशुओं के रूप में ही प्राप्त होता था। इस प्रकार प्राप्त राजस्व को ''ब्रज'' कहा जाता था।

(vii) वणिक पथ कर :

स्थलमार्ग तथा जल मार्ग को वणिक पथ की संज्ञा दी गयी है, इन्हें भी कर प्राप्ति का स्रोत माना गया है।[24] यात्री, माल, मवेशी तथा गाड़ियों को नदी पार ले जाने के लिए नौका कर लगता था, पर यह कम था।

(viii) पौतव कर :

कौटिल्य ने राज्य में मापतौल के साधनों में एकरूपता की स्थापना के लिए तथा जनता को वंचकों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए पौतवाध्यक्ष की नियुक्ति का विधान किया है। इसके द्वारा माप तौल के साधनों का निर्माण और निरीक्षण किया जाता था। कौटिल्य का मत है कि प्रत्येक चार मास के बाद कम से कम एक बार मापतौल के साधनों का निरीक्षण पौतवाध्यक्ष को अवश्य करना चाहिए। जो व्यक्ति मापतौल के साधनों का निरीक्षण नहीं कराते थे, उन्हें दण्ड दिया जाता था। मापतौल साधनों की उस निरीक्षण व्यवस्था के लिए व्यापारियों को प्रतिदिन एक कांकणी निरीक्षण के रूप में देना पड़ता था।

(ix) बलि कर :

कौटिल्य के अनुसार बलि कर राजस्व प्राप्त करने की एक प्रभावी तकनीक थी। मनुस्मृति के बालिकर में अधिकारियों को धान, गेहूं या अन्य आपूर्ति दान करके व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए बलिदान को नियोजित किया गया था। इस विचार का उल्लेख महाभारत और शांति पर्व में भी मिलता है, जब सरकार लोगों से षडयंत्र स्वीकार करती है और उसका उचित व्यय करती है। बलिकर का उल्लेख पुराणों में भी मिलता है।

(x) नागरिक अधिकारी द्वारा प्राप्त कर ;राजांशद्ध

'नागरिक' राजधानी को छोड़कर राज्य के बाकी हिस्सों से कर इकट्ठा करने के साथ–साथ पूरी राजधानी से रॉयल्टी इकट्ठा करने का प्रभारी अधिकारी है। वे शहर में शांति और सुरक्षा बनाए रखने के साथ–साथ संपत्ति कर लगाने और नागरिकों से शहर के खजाने में जमा करने के लिए धन इकट्ठा करने के प्रभारी हैं। ये नियम शहर को व्यवस्थित रखते हैं और निवासियों और आगंतुकों को सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार कौटिल्यकालीन भारत के वित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत कर आय स्रोतों के रूप में उन उक्त वर्णित सभी करों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

आधुनिक भारत के वित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत लोक आय में कौटिल्यकाल की तरह ही कर आय स्रोत की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ है। परन्तु कौटिल्यकाल में समस्त एकत्र आय को राजकीय आय ही कहा जाता था। उसके केन्द्रीय प्रान्तीय एवं स्थानीय भेद नहीं थे। आज देश की व्यवस्था का संचालन संयुक्त तथा पृथक रूप से केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों द्वारा किया जाता है। अतः लोक आय का भी केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय आधार पर विभाजन हो

गया है। आधुनिक भारत की केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सत्ताओं को प्राप्त होनेवाली कर आय की मुख्य मदें इस प्रकार हैः–

(क) **संघीय कर :**

भारतीय संविधान के अधीन केन्द्र सरकार को कुछ करों को लगाने एवं वसूलने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। भूमि को छोड़कर व्यक्तियों तथा कम्पनियों की पूँजी पर सम्पत्ति कर, कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों पर उत्तराधिकारी कर, रेल, समुद्र तथा वायु मार्ग से ढोए गए माल एवं यात्रियों पर चुंगी, वेचान साध्य विलेखों तथा बीमा, लेखपत्र, अंश हस्तांतरण– ऋण पत्र आदि पर मुद्रांक कर, समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें छपे विज्ञापनों पर कर, अन्तर्राज्यीय क्रय–विक्रय पर कर, शेयर बाजार तथा भावी बाजार में किए गए सौदों पर मुद्रांक को छोड़कर अन्य कर तथा रेल भाड़े एवं किराए पर कर्ज इत्यादि आते है।

(ख) **राजकीय कर :**

भूमि किराया, कृषि भूमि पर आयकर, कृषि भूमि के उत्तराधिकारियों पर कर, कृषि भूमि पर धन कर, संपत्ति और आवास पर शुल्क, खनिज खनन कर, राज्यों में उत्पादित दवाओं पर उत्पादन कर, बिजली उत्पादन और खपत सभी इसके अंतर्गत आते हैं। कर, समाचार पत्रों के अलावा अन्य वस्तुओं की बिक्री और खरीद पर कर, विज्ञापन पर कर, समाचार पत्रों के अलावा अंतर्देशीय जल और भूमि मार्ग यात्रियों पर कर, विभिन्न प्रकार के अटोमोबाइल पर कर, पालतू जानवरों और नावों पर कर, व्यापार और अवकाश गतिविधियों पर कर। जुए और जुए पर, साथ ही गैर–वित्तीय कागजात आदि पर स्टांप शुल्क।

इस तरह स्पष्ट है कि कौटिल्य ने कर से प्राप्त समग्र आयों को राजकीय आय की श्रेणी में रखा था जबकि आधुनिक भारत में कर आय स्रोतों को केन्द्रीय एवं राज्यीय करों के रूप में विभक्त कर राजकीय आय प्राप्त किए गए है। अर्थात कर स्रोत से आय प्राप्त करने में केन्द्र सरकार और राज्य सरकार दोनों की भूमिका होती है।

(ग) **गैर कर आय स्रोतः**

कौटिल्यकाल में लोक आय में करों के साथ–साथ गैर कर संसाधनों का भी महत्वपूर्ण योगदान था। गैर कर स्रोतो में अर्थदण्ड, राज्य नियंत्रित तथा राजकीय स्वामित्व में चलनेवाले उद्योग व व्यापार की आय, राजकीय सेवाओं का मूल्य, सिक्कों के टंकण के द्वारा प्राप्त आय, वनों से आय, राजकीय सम्पत्तियों से होने वाली आय आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

संदर्भ

1. महाभारत– 12/71/10, पर्व– 12, अध्याय– 71, शलोक–10.
2. नारदस्मृति– 18/48.
3. शुक्रनीतिसार– 1/188.
4. महाभारत– 12/88/4.
5. अर्थशास्त्र– 2/16/4, 5.